International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 1; January, 2018; Page No. 348-350

सन्त मलूकदास के काव्य में नारी–विषयक सामाजिक चेतना

अंजली रानी
जवाहर चौक फतेहाबाद, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

मनुष्य सदैव पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर जीवन यात्रा सम्पन्न करता है। जीवन क्रिया को सुसम्पादित करने के हेतु मनुष्य को विविध सम्पर्कों एवं सम्बन्धों की आवश्यकता होती है जिससे वह पूर्णत्व प्राप्त कर सके। इसके लिए मनुष्य को मानव के सहयोग के साथ साथ सामाजिक सहयोग की अपेक्षा होती है।

प्राचीन काल से मनुष्य पारस्परिक सौहार्द्र, मिलजुलकर रहना, पारस्परिक सौजन्यता, पारस्परिक सुख दुख की समानानुभूति तथा सहाय्य प्राप्ति, पारस्परिक सहानुभूति प्रकटन, मानवी कर्तव्यों का निर्वहन, सामाजिक प्रचलनों का परिपालन आदि कार्य करता चला आ रहा है। इन व्यक्तिगत एवं सामाजिक सहाय्य एवं सहयोगी तत्वों को जिनके द्वारा मानवी जीवन गतिशील होता तथा पूर्णता को प्राप्त करता है समाज की संज्ञा दी जाती है। समाज शास्त्र के प्रकांड विद्वजनों ने समाज की विविध परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। थामस हाब्स के अनुसार मनुष्य का अपने ही अनिरुद्ध स्वभाव के परिणाम से बचने के साधन को 'समाज' कहा जाता है। [1] एडम स्मिथ ने मानव समाज के पारस्परिक सम्बन्धों में बचत के कृत्रिम उपायों का नाम 'समाज' बताया है। [2] मैकआइवर मनुष्यों तथा अन्य सामाजिक प्राणियों द्वारा एक दूसरे के साथ स्थापित किए गए सम्बन्ध, उसके प्रकार तथा अंशों को 'समाज' कहते हैं। [3] गिडिंग्स के अनुसार– 'समाज वह संगठन है जिसमें भाग लेने वाले व्यक्ति एक दूसरे के साथ व्यावहारिक सम्बन्धों में बँधे रहते हैं।' [4] जिन्सबर्ग ने कहा है कि, 'समाज व्यक्तियों के उस समूह को कहते हैं जो किसी खास सम्बंधों व व्यापारों से सम्बन्ध रखता हो।' [5] राइट के अनुसार, 'समाज का अर्थ केवल व्यक्तियों का समूह ही नहीं है, समूह में रहने वाले व्यक्तियों के जो पारस्परिक सम्बन्ध हैं, उन सम्बन्धों के संगठित रूप को समाज कहते हैं।' [6]

इन परिभाषाओं के आधार पर यह निश्चित हो जाता है कि स्वकर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों के संगठित रूप को समाज कहा जाता है। व्यक्ति के आचार विचारों के अनुरूप ही समाज का स्वरूप निर्धारित होता है। व्यक्ति एक इकाई है जिसके संगठित रूप को समाज की संज्ञा दी जाती है। वेदों में भी हमें समाज के स्वरूप का वर्णन मिलता हैः

सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः।
अक्षुध्या अतृष्यासो गृहा मास्मद्विभीतन।। [7]

अर्थात् जिन घरों के निवासी परस्पर मधुर एवं सभ्य समभाषी है, जहाँ सौभाग्य रहता है, प्रीति भोज होता है, जहाँ सब हँसी खुशी के साथ रहते हैं और जहाँ न कोई भूखा है न नंगा न प्यासा, वहाँ कहीं से भय का संचार नहीं होता।)ग्वेद में भी मानव संगठन का आदेश है फ्सुसहासति।, [8]

'अथर्ववेद' में जल, अन्न एवं समान बन्धन के द्वारा मानव को संगठित करने का आदेश हैः फ्समानी प्रपा सहवोन्नभागः समाने योक्त्रे सहवोयुनज्मि।[9], मानव समाज के उसी स्वरूप को सुसमाज कहा गया है जिसमें सम्पूर्ण रूपेण ऐक्य हो।

महात्मा मलूकदास का युग सामाजिक संगठन की दृष्टि से एक अस्तव्यस्तता, भिन्नता का युग था। उस समय व्यक्तिवाद का प्राबल्य था। जिसकी लाठी उसकी भैंस, कहावत चरितार्थ हो रही थी। समाज विभिन्न प्रकार के अंश–उपांशों में क्षिप्तविक्षिप्त था। मलूक ने इस सामाजिक वि शृंखलता के मूल व्यक्ति के सम्मुख, उच्चादर्श उपस्थित किया। समाज की प्रथम इकाई व्यक्ति जब उच्चादर्शवान, चरित्रवान, सर्वगुण सम्पन्न, परोपकारी होगा तो समाज का एक उच्च कोटि का होना स्वाभाविक है। मलूक के अनुसार व्यक्ति को गुणग्राही और आत्मज्ञानी होना चाहिए–

प्रेम भगति जाके घट, पूरन ग्यानी सोइ।
कह मलूक जल तरंग ज्यों, कहत सुनत में दोइ।। [10]

मलूक जी भी स्वीकार करते हैं कि व्यक्तिगत आचरण का समाज पर प्रभाव होता ही है : समाज को उसके अंगभूत व्यक्ति से अलग नहीं किया जा सकता। अतएव व्यक्ति को सदाचरणशील होना ही चाहिए क्योंकि उसी के आधार पर समाज की उन्नति और विकास सम्भावित हैः

प्रेम प्रीति सों आरती, कीजै बारम्बार।
आरती आरतवंत की, सहि नहिं सकत मुरारि।। [11]

मलूकदास के आदर्शवान व्यक्ति को परोपकारी, त्यागवृत्तिवान एवं समाजहितु होना चाहिए। मलूक के शब्दों में–

मन ही के संकल्प ते, भयो जो तन अभिमान।
सो छूटै जब कीजिये, ब्रह्म नदी असनान।। [12]

समाज में ऐक्य स्थापित करने वाला और समाज के लिए सर्वस्व उत्सर्ग करने वाला व्यक्ति ही व्यक्ति है। मलूक के मतानुसार– 'ईश्वर के सामने सब मनुष्य समान हैं। किसी आदमी को इसलिए तिरस्कार से देखना कि वह सहधर्मी नहीं है, ईश्वर और मनुष्य के सामने पाप है। यथा–

सब कोउ साहब बन्दते, हिन्दू मुसलमान।
साहब तिनको बन्दते, जिन का ठौर इमान।। [13]

मलूकदास के अनुसार, व्यक्ति निस्पृह, निरहंकार, निस्संग, निर्विषय

एवं सन्त समान होना चाहिए। मलूक कहते हैं–

नमो जगतपति जगतगुरु, जगन्नाथ जग राइ।
जग जीवन जग हित करन, जग मनि सो जदु राइ।। [14]

सन्त मलूक के अनुसार सच्चा व्यक्ति समदर्शी, सर्वसमान एवं भग्वद्भक्त है और वह भगवान का दास है। यथा–

हरि के जनम कर्म गुन, गावत होत प्रकास।
संकट निकट न आवई, कहत मलूकादास।। [15]

मलूकदास का व्यक्ति स्वशासित, सत्याचरणशील, सर्वगुण सम्पन्न, प्रत्येक क्षण समाज के हित का चिंतन करने वाला, सुशिष्ठ सन्त समान तथा वैष्णवजन होना चाहिए। ऐसे ही व्यक्तियों द्वारा संगठित समाज एक आदर्श समाज होता है– न कोई छोटा है न बड़ा सबसे बड़ा ईश्वर है–

'छोटो बड़ो न घटि बढ़ि, आफहिं सब प्रकास।
कहै मलूक अनादि हरि, साधन को विश्वास।। [16]

सन्त मलूक समाज की इकाई व्यक्ति को उच्चादर्शवान् संयमी सन्त के स्वरूप में प्रतिपादित करते हैं। यथा–

अभ्यास बिना पावै नहीं, सत चित ब्रह्म बिलास।
ताते ब्रह्म अभ्यास से, ब्रह्म भाउ होइ जाइस।। [17]

व्यक्ति में स्त्रीत्व सम्मिलित है, परंतु लौकिक दृष्टि से स्त्री का स्थान पृथक् ही विचारणीय होता है। समाज संगठन में परिवार संगठन का महान महत्व है। नर–नारी के वैवाहिक जीवन के फलस्वरूप स्त्री–फरुष का दाम्पत्य जीवन शुरू होता है और दोनों के सम्मिलन से नवीन दृष्टि की रचना, संतान उप संतान के रूप में उपस्थित होती है और संतान, प्रसंतान उप संतान आदि के एकत्रित रूप को परिवार की संज्ञा दी जाती है। परिवारिक जीव की शांति व्यवस्था, सुख समृद्धि और प्रगति नारी के चारित्र्य विकास पर निर्भर है। स्त्री–फरुष में चारित्र्य की दृष्टि से स्त्री का आसन ज्यादा उँफचा है, क्योंकि आज भी वह त्याग, मूक तपस्या, नम्रता, श्रद्धा और ज्ञान की प्रतीक है–

सदा सोहागिन नारि सो, जा के राम भतारा।
मुख माँगे सुख देत हैं, जगजीवन प्यारा।।
कबहुँ न चढ़ै रंडफरा, जानै सब कोई।
अजर अमर अबिनासिया, ता को नास न होई।।
नर देंही दिन दोय की, सुन गुरजन मेरी।
क्या ऐसों का नेहरा, मुए बिपति घनेरी।।
ना उपजै ना बीनसै, संतन सुखदाई।
कहैं मलूक यह जानि के, मैं प्रीति लगाई।। [18]

मलूक ने भी चरित्र भ्रष्ट नारी की घोर निन्दा की है और उसे महानतम विकार बताया है।

माया काली नागिनी, जिन डसिया सब संसार हो।।
इन्द्र डसा ब्रह्मा, डसिया डसिया नारद ब्यास हो।
महा कठिन यह हरि की माया, या तें कौन बचावै।
जौन कहै जड़ मूलहिं त्यागी, तिन को हाथ लगावै।।
करनी करि बैकुंठ न पैठी, काहे भई पषाना।।
आपा मेटो राम भजो तुम, कहत मलूक दिवाना।। [19]

मलूक में नारी–भावना उच्चादर्श की द्योतक है। त्यागमूर्ति, गृहलक्ष्मी, स्वपति प्रेम में अनन्य रूपा निष्ठावान सती नारी की मलूक ने प्रशंसा की है। उसे अपना सर्वस्व अपने प्रेमाधार पति के समर्पित कर देना चाहिए।

प्रीतम राम सँभारिये, मन बच कर्म बिचारि।
मीत कन्हाई भगत का, भाषत वेद फकारि।। [20]

अपने पति के प्रति उसे इतनी निष्ठावान एवं श्रद्धायुक्त होना चाहिए कि वह पति और अपने में विभेद न कर सके।

'हरि दरसन के चाउ ते, लागी हरि सों प्रीति।
बिसरी कुल मरजाद सब, प्रेम अटपटी रीति।। [21]

विशुद्ध प्रीतिभाव तथा तन्मयता भाव में नर नारी का स्वरूप एक हो जाता है जो सुखद जीवन के हेतु आवश्यक है।

महिमा प्रेम भगति की, बरनौं कहा विशेष।
सो हरि देखौं नैन भरि, जाकौ रूप न रेख।। [22]

भारतीय पारिवारिक संगठन में पति–पत्नी का सम्बन्ध अत्यन्त पवित्र एवं धर्मनिष्ठ माना जाता है। वैवाहिक जीवन का उद्देश्य इस लोक तथा परलोक में दाम्पत्य जीवन को कल्याण कारी बनाने को है। यहाँ गृहस्थ जीवन केवल भोग के लिए नहीं होता वरन् धर्म के हेतु होता है। मातृत्व कला का यहाँ आदर किया जाता है। जो माँ प्रेम, उदारता, सहनशीलता तथा त्याग भावना के द्वारा संतान का पालन पोषण करके एक उच्च कोटि के नागरिक बनाती है उसका जीवन धन्य माना जाता है। प्रत्येक माता पिता को अपनी संतान को आदर्शवान, चरित्रवान, परोपकारी, विद्वान, गुणज्ञ बनाना चाहिए। सौजन्यता की मूर्ति, आज्ञाकारी, सहृदय, अपने वरिष्ठों को समादर पूर्वक सम्मान करने वाली, सच्चरित्र संतान ही समाज का उत्कर्षपूर्ण स्वरूप निर्माण करने में समर्थ हो सकती है। वह परिवार अत्यन्त सुखी होता है जिसमें माँ बाप, भाई बहिन, छोटे बड़े, बाल वृद्ध सब एक दूसरे के कल्याण के हेतु त्याग भाव से सत्कार्यों में संलग्न रहते हैं और उन्नति करते हैं। एक परिवार तथा दूसरे परिवार में परस्पर पड़ोसी का सम्बन्ध होता है। पड़ोसी का कर्तव्य सदैव पड़ोसी की सहायता करना होता है।

निष्कर्षः

नारी का स्थान समाज में उच्च माना गया है। नारीत्व का यह उच्च आदर्श काल समय की कठोर गति में विलीन होता गया और मध्यकाल में नारी को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा और उसको अनेक प्रथाओं, प्रचलनों के द्वारा बँधन में बाँध कर हीनावस्था में बिठा दिया गया। मलूक की कृतियों में महिला कल्याण के हेतु कोई संकेत नहीं मिलते केवल सदाचरणशीलता के सम्बन्ध में उपदेशात्मक विचार हैं। सन्त मलूक ने नारी का आदर्श एवं उसका आवश्यक रूप भारतीय परम्परायुक्त सती, पतिव्रता, गृहलक्ष्मी के स्वरूप में देखना चाहते थे। उनके अनुसार स्त्री का कार्यक्षेत्र मूलतः और प्रथमतः घर ही है। वस्तुतः मलूक उपदेशक रूप में नारी जीवन

में सतीत्व तथा पतिव्रत धर्म का स्थायित्व चाहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. समाजशास्त्रा, पृ. 40
2. वही, पृ. 40
3. वही, पृ. 40
4. वही, पृ. 40
5. वही, पृ. 40
6. समाजशास्त्रा, पृ. 40
7. पैप्पलाद संहिता, 3.26
8. ग्वेद, 10. 191. 4
9. अथर्ववेद 3. 30. 6
10. बलदेव वंशी ;संपा.0, सन्त मलूक ग्रंथावली, पृ. 34
11. वही, पृ. 34
12. वही, पृ. 38
13. बलदेव वंशी ;संपा.0, सन्त मलूक ग्रंथावली, पृ. 38
14. वही, पृ. 41
15. वही, पृ. 40
16. बलदेव वंशी ;संपा.0, सन्त मलूक ग्रंथावली, पृ. 40
17. वही, पृ. 42
18. वही, पृ. 44
19. बलदेव वंशी ;संपा.0, सन्त मलूक ग्रंथावली, पृ. 49, 55
20. वही, पृ. 33
21. बलदेव वंशी ;संपा.0, सन्त मलूक ग्रंथावली, पृ. 33
22. वही, पृ. 33